आंखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन

उषाकिरण खान

आखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन

उषाकिरण खान

भूमिका

उषाकिरण खान (24 अक्टूबर, 1945) ने आठवें दशके के लगभग अंत में कहानी-लेखन आरंभ कर दिया था। उनकी पहली कहानी 'आँखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन' (1978)[1] 'कहानी' पत्रिका में, और पहला कहानी-संग्रह 'विवश विक्रमादित्य' (1980), पारिजात प्रकाशन, पटना से प्रकाशित हुआ था। उनके अन्य कहानी-संग्रह 'दूब-धान और अन्य कहानियाँ' (1985), 'कासवन' (2000), 'जलधार' (2005) 'घर से घर तक' (2009), 'जनम अवधि' (2010) आदि हैं, जिनसे इस संग्रह की कहानियाँ ली गई हैं।

इन कहानियों में न तो प्रकाशन-काल का कोई क्रम है न ही कथ्य की एकरूपता का। वस्तुत: ये कहानियाँ अपने प्रकाशन-काल के साथ बहुत गहराई से जुड़ी हुई नहीं हैं। लेखिका ने मेरे नाम लिखे अपने एक पत्र में स्वीकार किया है कि 'अपने जीवनानुभव से मैंने समाज में जो देखा, उसी को कहानियों का विषय बनाया।'[2]

एक संवेदनशील लेखिका और नारी होने के कारण उषाकिरण खान का नारी संवेदना से गहरा भावनात्मक लगाव है, जो उनकी कहानियों में परिलक्षित होता है। 'आँखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन' में स्त्री-पुरुष संबंध की बड़ी मनोरम, भावात्मक झाँकी देखने को मिलती है। यह कहानी आकार में बहुत छोटी, पर संवेदनात्मक दृष्टि से अत्यंत मारक है। इसके प्रभाव में 'नावक के तीर' का स्मरण हो आता है, 'जो देखने में छोटा', पर 'घाव करने में गंभीर' होता है। आकार में 'छोटा' होना 'कहानी' का सहज स्वभाव भी माना जाता है।

-गोपाल राय

आखें स्निग्ध तरल और बहुरंगी मन

ओफ्फोह, रोशनी गुल हो गई। अभी तो पुराने कपड़ों की गठरी बँधी नहीं। थोड़ा-सा कुछ रास्ते के लिए सूखा भी तैयार करना है। उफ, कितनी उमस है। रात को नींद भी अच्छी आए फिर ही तो सुबह समय पर तैयार हो सकेगी। अब की चाय तैयार कर थरमस में ले लेगी। नहीं तो बाढ़ पीड़ितों के बीच स्वयं क्षुधा-पीड़ित हो जाएगी। पता नहीं कब रोशनी आएगी।

यही सबसे बड़ी मुसीबत है यहाँ ऐन काम के मौके पर रोशनी चली जाती है। आज नींद भी आ रही है। अब सोना चाहिए। पिछली सीढ़ियों का दरवाजा खुला छोड़कर परदे ठीक करने लगती है। अब काफी समय हुआ रोशनी गए हुए। वो दुकान बंद कर आता ही होगा। सोचते ही पुलक से भर उठी। कितना सीधा है पल्लू उसका पति। सुंदर स्मार्ट भी कितना, बहुत हद तक इसका चंचल मन उसके वश में हो गया है। अपने पल्लू को वह भोलू कहती है। भोला है पर कितना गहरा, और कैसी उद्दाम है उसकी प्रेम तरंग कि ठीक आठ बजे सवेरे तैयार होकर सदर दरवाजे की चौड़ी सीढ़ी उतरकर दुकान की ओर जाता है। दुकान खोल, सारे बरतन झाड़कर करीने से सजा देता है। मुंशी जी को बिठा, सबकी निगाह बचा, पिछले दरवाजे से ठीक नौ बजे दाखिल हो जाता है। इस नियम में भी व्यतिरेक नहीं होता। बूसरे गौने के बाद ही एक दिन नौ बजे टेबुल पर अलबम फैलाये देख रही थी, अभी नाश्ता ऊपर नहीं आया था। उसके यहाँ यही नियम था। मर्द मानुष अलग पहले नाश्ता कर दुकानों पर चले जाते और औरतों का जब मन होता तब करतीं। कोई चौके में करती, कोई अपने कमरे में ऊपर। तभी वो आ गया पीछे से। आँखें बंद कर लीं पसीजे हाथों से। चौंक उठी थी बिलकुल, कौन आ गया अचानक। चीखने को हो आई थी। उसने एक हाथ मुँह पर डाला था दूसरा कमर में, हाय ! फिर मुँह पर से हाथ नीचे रेंगते गए और उसकी जगह होंठों ने ले ली। उस